चित्रकाव्य का उत्कर्ष—सप्तसन्धान महाकाव्य

श्री सत्यव्रत 'तृषित' श्रीगंगानगर

अपनी विद्वत्ता तथा रचना कौशलके प्रदर्शनके लिए संस्कृत कवियोंने जिन काव्य-शैलियोंका आश्रय लिया है, उनमें नानार्थक काव्योंकी परम्परा बहुत प्राचीन है। भोजकृत शृंगार प्रकाशमें दण्डीके द्विसन्धान काव्यका उल्लेख हुआ है। दण्डीका द्विसन्धान तो उपलब्ध नहीं, किन्तु उनकी चित्र काव्य-शैलीने परवर्ती कवियोंको इतना प्रभावित किया कि साहित्यमें, शास्त्रकाव्योंकी भाँति नानार्थक काव्योंकी एक अभिनव विद्याका सूत्रपात हुआ तथा इस कोटिकी रचनाओंका प्रचुर संख्यामें निर्माण होने लगा। जैन कवियोंने सप्त-संधान, चतुर्विंशति संधान तथा शतार्थक काव्य लिखकर इस भाषायी जादूगरीको चरम सीमा तक पहुँचा दिया। अनेक संधान काव्यमें श्लेषविधि अथवा विलोमरीतिसे एक-साथ एकाधिक कथाओंके गुम्फनके द्वारा काव्य-रचयिताको भाषाधिकार तथा रचना-नैपुण्य प्रदर्शित करनेका अबाध अवकाश मिल जाता है। अतः, आत्मज्ञापनके शौकीन पण्डित कवियोंका इधर प्रवृत्त होना बहुत स्वाभाविक था।

जैन कवि मेघविजयगणि (सतरहवीं शताब्दी) का सप्तसन्धान महाकाव्य[1] चित्रकाव्य शैलीका उत्कर्ष है। साहित्यका आदिम सप्तसन्धान काव्य कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्रकी उर्वर लेखनीसे प्रसूत हुआ था। उसकी अप्राप्तिसे उत्पन्न खिन्नताको दूर करनेके लिये मेघविजयने प्रस्तुत काव्य रचना की।[2] नौ सर्गोंके इस महाकाव्यमें जैन धर्मके पाँच तीर्थंकरों—ऋषभदेव, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर तथा पुरुषोत्तम राम और कृष्ण वासुदेवका चरित श्लेषविधिसे गुम्फित है। काव्यमें यद्यपि इन महापुरुषोंके जीवनके कतिपय महत्त्वपूर्ण प्रकरणोंका ही निबन्धन हुआ है, किन्तु उन्हें एक साथ चित्रित करनेके दुस्साध्य कार्यकी पूर्तिके लिए कविको विकट चित्र शैली तथा उच्छृंखल शाब्दी क्रीडाका आश्रय लेना पड़ा है, जिससे काव्य वज्रवत् दुर्भेद्य बन गया है। टीकाके जल-पाथेयके बिना काव्यके मरुस्थलको पार करना सर्वथा असम्भव है। विजयामृत सूरिने अपनी विद्वत्तापूर्ण 'सरणी'से काव्यका मर्म विवृत करनेका प्रशंसनीय प्रयास किया है, यद्यपि कहीं-कहीं 'सरणी' भी काव्यकी भाँति दुरूह बन गयी है।

सप्तसन्धान का महाकाव्यत्व

सप्तसन्धानके कर्त्ताका मुख्य उद्देश्य चित्रकाव्य-रचनामें अपनी वैदग्धीका प्रकाशन करना है, और इस लक्ष्यके सम्मुख, उसके लिये काव्यके अन्य धर्म गौण हैं; तथापि इसमें प्रायः वे सभी तत्त्व किसी न किसी रूपमें विद्यमान हैं, जिन्हें प्राचीन लक्षणकारों ने महाकाव्यके लिये आवश्यक माना है। संस्कृत महाकाव्यकी रूढ़ परम्पराके अनुसार प्रस्तुत काव्यका आरम्भ चार मंगलाचरणात्मक पद्योंसे हुआ है, जिनमें जिनेश्वरों तथा वाग्देवीकी वन्दना की गयी है। काव्यके आरम्भमें सज्जनप्रशंसा, दुर्जननिन्दा, सन्नगरी वर्णन आदि बद्धमूल

---

१. जैन-साहित्य-वर्धक सभा, सूरतसे 'सखी' सहित प्रकाशित, विक्रम संवत् २०००।

२. श्री हेमचन्द्रसूरीशैः सप्तसन्धानमादिमम्।
रचितं तदलाभे तु स्तादिदं तुष्टये सताम्॥ प्रशस्ति, २।

रूढ़ियोंका भी निर्वाह हुआ है। रघुवंशकी भाँति सप्तसन्धान नाना नायकोंके चरितपर आधारित है, जो धीरोदात्त गुणोंसे सम्पन्न महापुरुष हैं। इसका कथानक जैन साहित्य तथा समाजमें, आंशिक रूप से जैनेतर समाजमें भी, चिरकाल से प्रचलित तथा ज्ञात है। अतः इसे 'इतिहास प्रसूत' (प्रख्यात) मानना न्यायोचित है। सप्तसन्धान-में यद्यपि महाकाव्योचित रसार्द्रताका अभाव है, तथापि इसमें शान्तरसकी प्रधानता मानी जा सकती है। शृंगार तथा वीर रसकी भी हल्की-सी रेखा दिखाई देती है। चतुर्वर्गमेंसे इसका उद्देश्य मोक्षप्राप्ति है। काव्यके चरितनायक (तीर्थंकर) कैवल्यज्ञान-प्राप्तिके पश्चात् शिवत्वको प्राप्त होते हैं। मानवजीवनकी चरम परिणति सतत साधनासे जन्म-मरणके चक्रसे मुक्ति प्राप्त करना है, भारतीय संस्कृतिका यह आदर्श ही काव्यमें प्रतिध्वनित हुआ है।

सप्तसन्धानकी रचना सर्गबद्ध काव्यके रूपमें हुई है। काव्यका शीर्षक रचना-प्रक्रिया पर आधारित है तथा इसके सर्गोंके नाम उनमें वर्णित विषयके अनुसार रखे गये हैं। छन्दोंके प्रयोगमें भी मेघविजयने शास्त्रीय विधानका पालन किया है। प्रत्येक सर्गमें एक छन्दकी प्रधानता है। सर्गान्तमें छन्द बदल दिया गया है। सातवें सर्गमें नाना छन्दोंका प्रयोग भी शास्त्रानुकूल है। इसके अतिरिक्त इसमें भाषागत प्रौढ़ता, विद्वत्ता-प्रदर्शनकी अदम्य प्रवृत्ति, शैलीकी गम्भीरता, नगर, पर्वत, षड्ऋतु आदि वस्तु-व्यापारके महाकाव्यसुलभ विस्तृत तथा अलंकृत वर्णन भी दृष्टिगोचर होते हैं। अतः सप्तसन्धानको महाकाव्य माननेमें कोई हिचक नहीं हो सकती। स्वयं कविने भी शीर्षक तथा प्रत्येक सर्गकी पुष्पिकामें इसे महाकाव्य संज्ञा प्रदान की है।

कवि-परिचय तथा रचनाकाल

अन्य अधिकांश जैन कवियोंकी भाँति मेघविजयका गृहस्थजीवन तो ज्ञात नहीं, किन्तु देवानन्दाभ्युदय, शान्तिनाथचरित, युक्तिप्रबोधनाटक आदि अपनी कृतियोंमें उन्होंने अपने मुनिजीवनका पर्याप्त परिचय दिया है। मेघविजय मुगल सम्राट् अकबरके कल्याणमित्र हीरविजयसूरिके शिष्यकुलमें थे। उनके दीक्षा-गुरु तो कृपाविजय थे, किन्तु उन्हें उपाध्याय पदपर विजयदेवसूरिके पट्टधर विजयप्रभसूरिने प्रतिष्ठित किया था।[१] विजयप्रभसूरिके प्रति मेघविजयकी असीम श्रद्धा है। न केवल देवानन्द महाकाव्यके अन्तिम सर्गमें उनका प्रशस्तिगान किया गया है अपितु दो स्वतन्त्र काव्यों—दिग्विजय महाकाव्य तथा मेघदूतसमस्यालेख-के द्वारा कविने गुरुके प्रति कृतज्ञता प्रकट की है। ये दोनों काव्य विजयप्रभसूरिके सारस्वत स्मारक हैं।

मेघविजय अपने समयके प्रतिभाशाली कवि, प्रत्युत्पन्न दार्शनिक, प्रयोगशुद्ध वैयाकरण, समयज्ञ ज्योतिषी तथा आध्यात्मिक आत्मज्ञानी थे। उन्होंने इन सभी विषयोंपर अपनी लेखनी चलायी तथा सभीको अपनी प्रतिभा तथा विद्वत्ताके स्पर्शसे आलोकित कर दिया। प्रस्तुत महाकाव्यके अतिरिक्त उनके दो अन्य महाकाव्य—देवानन्दाभ्युदय तथा दिग्विजय महाकाव्य सुविज्ञात हैं। मेघविजय समस्यापूर्तिके पारंगत आचार्य हैं। देवानन्द, मेघदूतसमस्यालेख तथा शान्तिनाथ चरितमें क्रमशः माघकाव्य, मेघदूत तथा नैषधचरितकी समस्यापूर्ति करके उन्होंने अद्भुत रचनाकौशलका परिचय दिया है। मेघविजयने किरातकाव्यकी भी समस्यापूर्ति की थी, किन्तु वह अब उपलब्ध नहीं है। लघुत्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित, भविष्यदत्तकथा तथा पंचाख्यान उनकी अन्य ज्ञात काव्यकृतियाँ हैं। विजयदेव माहात्म्य विवरण श्रीवल्लभके सुविख्यात विजय-देव माहात्म्यकी टीका है। युक्तिप्रबोधनाटक तथा धर्ममंजूषा उनके न्यायग्रन्थ हैं। चन्द्रप्रभा, हैमशब्दचन्द्रिका,

---

३. गच्छाधीश्वरहीरविजयाम्नाये निकाये धियां प्रेष्यः श्रीविजयप्रभाख्यसुगुरोः श्रीतपाख्ये गणे।
शिष्यः प्राज्ञमणेः कृपादिविजयस्याशास्यमानामग्रणीश्चक्रे वाचकनाममेघविजयः शस्यां समस्यामिमाम्॥
शान्तिनाथचरित, प्रतिसर्गान्ते

हैमशब्दप्रक्रिया उनके व्याकरण-पाण्डित्यके प्रतीक हैं। चन्द्रप्रभामें हैमव्याकरणको कौमुदी रूपमें प्रस्तुत किया गया है। वर्ष प्रबोध, रमल शास्त्र, हस्तसंजीवन, उदयदीपिका, प्रश्नसुन्दरी, वीसायन्त्रविधि उनकी ज्योतिष रचनाएँ हैं। अध्यात्मसे सम्बन्धित कृतियोंमें मातृकाप्रसाद, ब्रह्मबोध तथा अर्हद्गीता उल्लेखनीय हैं। इन चौबीस ग्रन्थोंके अतिरिक्त पंचतीर्थस्तुति तथा भक्तामरस्तोत्रपर उनकी टीकाएँ भी उपलब्ध हैं।

संस्कृत की भाँति गुजराती भाषाको भी मेघविजयकी प्रतिभाका वरदान मिला था। जैनधरमदीपक, जैन शासनदीपक, आहारगवेषणा, श्रीविजयदेवसूरिनिर्वाणरास, कृपाविजयनिर्वाणरास, चोविशजिनस्तवन, पार्श्वनाथस्तोत्र आदि उनकी राजस्थानी गुजराती रचनाएँ हैं। यह वैविध्यपूर्ण साहित्य मेघविजयकी बहुश्रुतता तथा बहुमुखी प्रतिभा का प्रतीक है।

प्रान्तप्रशस्तिके अनुसार सप्तसन्धानकी रचना संवत् १७६० (सन् १७०३ ई०में) हुई थी।

वियद्रसेन्दूनां (१७६०) प्रमाणात् परिवत्सरे।
कृतोऽयमुद्यमः पूर्वाचार्यचर्याप्रतिष्ठितः॥

मेघविजयने अपनी कुछ अन्य कृतियोंमें भी रचनाकालका निर्देश किया है। उससे उनके स्थितिकालका कुछ अनुमान किया जा सकता है। विजयदेवमाहात्म्यविवरणकी प्रतिलिपि मुनि सोमगणिने संवत् १७०९ में की थी।[1] अतः उसका इससे पूर्वरचित होना निश्चित है। यह मेघविजयकी प्रथम रचना प्रतीत होती है। सप्तसन्धान उनकी साहित्य-साधना की परिणति है। यह उनकी अन्तिम रचना है। विजयदेवमाहात्म्य विवरणकी रचनाके समय उनकी अवस्था २०-२५ वर्षकी अवश्य रही होगी। अतः मेघविजयका कार्यकाल १६२७ तथा १७१० ई० के बीच मानना सर्वथा न्यायोचित होगा।

कथानक—सप्तसन्धान नौ सर्गोंका महाकाव्य है, जिसमें पूर्वोक्त सात महापुरुषोंके जीवनचरित एक साथ अनुस्यूत हैं। बहुधा श्लेषविधिसे वर्णित होनेके कारण जीवनवृत्तका इस प्रकार गुम्फन हुआ है कि विभिन्न नायकोंके चरितको अलग करना कठिन हो जाता है। अतः कथानकका सामान्य सार देकर यहाँ सातों महापुरुषोंके जीवनकी घटनाओंको पृथक्-पृथक् दिया जा रहा है।

अवतार वर्णन नामक प्रथम सर्गमें चरितनायकोंके पिताओं की राजधानियों, इनकी शासन-व्यवस्था तथा माताओं के स्वप्नदर्शनका वर्णन है। द्वितीय सर्गमें चरित नायकों का जन्म वर्णित है। उनके धरा पर अवतीर्ण होते ही समस्त रोग शान्त हो जाते हैं तथा प्रजा का अभ्युदय होता है। तृतीत सर्गमें नायकोंके जन्माभिषेक, नायकरण तथा विवाह का निरूपण किया गया है। पूज्यराज्यवर्णन नामक चतुर्थ सर्गके प्रथम चौदह पद्योंमें आदि प्रभुके राज्याभिषेकके लिये देवताओंके आगमन, ऋषभदेवकी सन्तानोत्पत्ति तथा उनकी प्रजाकी सुख-समृद्धिका वर्णन है। अगले सौलह पद्योंमें कृष्णचरितके अन्तर्गत कौरव-पाण्डवोंके वैर, द्रौपदीके चीरहरण तथा दीक्षाग्रहण आदिकी चर्चा है। सर्गके शेषांशमें तीर्थंकरों द्वारा राजत्याग तथा प्रव्रज्याग्रहण करने का वर्णन है। पंचम सर्गमें काव्यमें वर्णित पाँच तीर्थंकरोंके विहार, तपश्चर्या तथा कष्ट सहन का प्रतिपादन हुआ है। उनके प्राकृतिक तथा भौतिक कष्ट सह कर वे तपसे कर्मों का क्षय करते हैं। उनके उपदेशसे प्रजाजन रागद्वेष आदि छोड़कर धार्मिक कृत्योंमें प्रवृत्त हो जाते हैं। छठे सर्गमें जिनेन्द्र कैवल्यज्ञान

१. लिखितोऽयं ग्रन्थः पण्डित श्री ५ श्रीरंग सोमगणिशिष्यमुनिसोमगणिना षं० १७०९ वर्षे चैत्रमासे·······
श्रीविनयदेवसूरीश्वरराज्ये। विजयदेव माहात्म्य, प्रान्तपुष्पिका।

प्राप्त करके स्याद्वाद पद्धतिसे उपदेश देते हैं। सातवें सर्गमें छह परम्परागत ऋतुओंका वर्णन किया गया है। तीर्थंकरोंके समवसरणके अवसरपर भावी चक्रवर्ती भरत, अन्य राजाओंके साथ उनकी सेवामें उपस्थित होते हैं। दिग्विजय वर्णन नामक अष्टम सर्गमें आदि तीर्थंकर ऋषभदेवके पुत्र, चक्रवर्ती भरतकी दिग्विजय, सांवत्सरिक दान तथा जिनेश्वरोंकी मोक्षप्राप्तिका निरूपण हुआ है। नवें सर्गमें मुख्यतः जिनेश्वरोंके गणधरोंका वर्णन किया गया है।

इस प्रकार काव्यमें सामान्यतया सातों नायकोंके माता-पिता, राजधानी, माताओंके स्वप्नदर्शन, गर्भाधान, दोहद, कुमारजन्म, जन्माभिषेक, बालक्रीड़ा, विवाह, राज्याभिषेक आदि सामान्य घटनाओं तथा पांच तीर्थंकरोंकी लौकान्तिक देवोंकी अभ्यर्थना, सांवत्सरिक दान, दीक्षा, तपश्चर्या, पारणा, केवलज्ञानप्राप्ति, समवसरण-रचना, देशना, निर्वाण, गणधर आदि प्रसंगोंका वर्णन है। विभिन्न महापुरुषोंके जीवनकी जिन विशिष्ट घटनाओंका निरूपण काव्यमें हुआ है, वे इस प्रकार हैं।

आदिनाथ—भरतको राज्य देना, नमिविनमिकृत सेवा, छद्मावस्थामें बाहुबलीका तक्षशिला जाना, समवसरणमें भरतका आगमन, चक्रवर्ती भरतका षट्खण्डसाधन, दिग्विजय, भगिनी सुन्दरीकी दीक्षा आदि।

शान्तिनाथ—अशिवहरण तथा षट्खण्डविजय द्वारा चक्रवर्तित्वकी प्राप्ति।

नेमिनाथ—राजीमतीका त्याग।

महावीर—गर्भहरणकी घटना।

रामचन्द्र—सीतास्वयंबर, वनगमन, सीताहरण, रावणवध, दीक्षाग्रहण, बहुविवाह, शम्बूकवध, रावणका कपट, हनुमानका दौत्य, जटायुवध, धनुर्भंग, सीताकी अग्नि परीक्षा, विभीषणका पक्षत्याग, विभीषणका राज्याभिषेक, युद्ध, रावणवध, शत्रुंजययात्रा, मोक्षप्राप्ति, सपत्नी-द्वेषके कारण सीता-त्याग, सीता द्वारा दीक्षाग्रहण आदि रामायणकी प्रमुख घटनाएँ।

कृष्णचन्द्र—रुक्मिणी-विवाह, कंसवध, प्रद्युम्न-वियोग, मथुरानिवास, प्रद्युम्न द्वारा उषाहरण, जरासन्धका आक्रमण, कालियदमन, द्वारिकादहन, शरीरत्याग, बलभद्रका कृष्णके शवको उठाकर घूमना, दीक्षाग्रहण, शिशुपाल एवं जरासन्धका वध। इसके साथ ही कृष्ण एवं नेमिनाथका पाण्डवोंके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होनेके कारण पाण्डवजन्म, द्रौपदीस्वयंवर, द्यूत, चीरहरण, वनवास, गुप्तवास, कीचकवध, अभिमन्युका पराक्रम, महाभारत-युद्ध एवं दुःशासन, द्रोण, भीष्म आदिका वध आदि महाभारतकी प्रमुख घटनाओंका उल्लेख भी काव्यमें हुआ है।

कथानकके प्रवाहकी ओर कविका ध्यान नहीं है। वस्तुतः काव्यका कथानक नगण्य है। चरितनायकोंके जीवनके कतिपय प्रसंगोंको प्रस्तुत करना ही कविको अभीष्ट है। इन घटनाओंके विनियोगमें भी कविका ध्येय अपनी विद्वत्ता तथा कवित्व शक्तिको बघारना रहा है। अतः काव्यमें वर्णित घटनाओंका अनुक्रम अस्तव्यस्त हो गया है। विशेषतः, रामके जीवनसे सम्बन्धित घटनाओंमें क्रमबद्धताका अभाव है। उदाहरणार्थ रामके किष्किन्धा जानेका उल्लेख पहले हुआ है, उनके अनुयायियोंके अयोध्या लौटनेकी चर्चा बाद में। सीता-स्वयंवर तथा वनगमनसे पूर्व सीताहरण तथा रावणवधका निरूपण करना हास्यस्पद है। इसी प्रकार हनुमानके दौत्यके पश्चात् जटायुवध तथा धनुर्भंगका उल्लेख किया जाना कविके प्रमादका द्योतक है।

काव्यमें रामकथाके जैन रूपान्तरका प्रतिपादन हुआ है। फलतः रामका एकपत्नीत्वका आदर्श यहाँ

समाप्त हो गया है। वे बहुविवाह करते हैं। उनकी चार पत्नियोंके नामोंका उल्लेख तो काव्यमें ही हुआ है। सपत्नियोंके षड्यन्त्रके कारण रामको सीताकी सच्चरित्रतापर सन्देह हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप वे उस गर्भिणीको राज्यसे निष्कासित कर देते हैं। रामके सुविज्ञात पुत्रों, कुश और लवका स्थान यहाँ अनंगलवण तथा मदनांकुश ले लेते हैं। जैन रामायणके अनुरूप ही राम शत्रुंजयकी यात्रा करते हैं तथा प्रव्रज्या ग्रहण करके मोक्ष प्राप्त करते हैं।

काव्यका सप्तसन्धानत्व

सात व्यक्तियोंके चरितको एक साथ गुम्फित करना दुस्साध्य कार्य है। प्रस्तुत काव्यमें यह कठिनाई इसलिए और बढ़ जाती है कि यहाँ जिन महापुरुषोंका जीवनवृत्त निबद्ध है, उनमें से पाँच जैनधर्मके तीर्थंकर हैं तथा अन्य दो हिन्दू धर्मके आराध्य देव, यद्यपि जैन साहित्यमें भी वे अज्ञात नहीं हैं। कविको अपने लक्ष्यकी पूर्तिमें संस्कृतकी संश्लिष्ट प्रकृतिसे सबसे अधिक सहायता मिली है। श्लेष ऐसा अलंकार है जिसके द्वारा कवि भाषाको इच्छानुसार तोड़-मरोड़कर अभीष्ट अर्थ निकाल सकता है। इसीलिए सप्तसन्धानमें श्लेषकी निर्बाध योजना की गयी है, जिससे काव्यका सातों पक्षोंमें अर्थ ग्रहण किया जा सके। किन्तु यहाँ यह ज्ञातव्य है कि सप्तसन्धानके प्रत्येक पद्यके सात अर्थ नहीं हैं। वस्तुतः काव्यमें ऐसे पद्य बहुत कम हैं, जिनके सात स्वतन्त्र अर्थ किये जा सकते हैं। अधिकांश पद्योंके तीन अर्थ निकलते हैं, जिनमेंसे एक, जिनेश्वरोंपर घटित होता है; शेष दोका सम्बन्ध राम तथा कृष्णसे है। तीर्थंकरोंकी निजी विशेषताओंके कारण कुछ पद्योंके चार, पाँच अथवा छह अर्थ भी किये जा सकते हैं। कुछ पद्य तो श्लेषसे सर्वथा मुक्त हैं तथा उनका केवल एक अर्थ है। यही अर्थ सातों चरितनायकोंपर चरितार्थ होता है। यही प्रस्तुत काव्यका सप्तसन्धानत्व है। कवि यह उक्ति—काव्येऽस्मिन्नत एव सप्त कथिता अर्थाः समर्थाः श्रियै (४/४२) भी इसी अर्थमें सार्थक है।

जो पद्य भिन्न-भिन्न अर्थोंके द्वारा सातों पक्षोंपर घटित होते हैं, उनमें व्यक्तियोंके अनुसार एक विशेष्य है, अन्य पद उसके विशेषण। अन्य पक्षमें अर्थ करनेपर वही विशेष्य विशेषण बन जाता है, विशेषणोंमेंसे प्रसंगानुसार एक पद विशेष्यकी पदवीपर आसीन हो जाता है। इस प्रकार पाठकको सातों अभीष्ट अर्थ प्राप्त हो जाते हैं। उदाहरणार्थ सातों चरितनायकोंके पिताओंके नाम प्रस्तुत पद्यमें समविष्ट हो गये हैं।

अवनिपतिरिहासीद् विश्वसेनोऽश्वसेनोप्यथ दशरथनाम्ना यः सनाभिः सुरेशः।
बलिविजयिसमुद्रः प्रौढसिद्धार्थसंज्ञः प्रसृतमरुणतेजस्तस्य भूकश्यपस्य ॥ १/५४

सातोंकी जन्मतिथियोंका उल्लेख भी एक ही पद्यमें कर दिया गया है।

ज्येष्ठेऽसिते विश्वहिते सुचैत्रे वसुप्रमे शुद्धनभोऽर्थमेये।
सांके दशाहे दिवसे सपोषे जनिर्जिनस्याजनि वीतदोषे ॥ २/१६

प्रस्तुत पद्यमें काव्यनायकोंके चारित्र्यग्रहण करनेका वर्णन एक-साथ हुआ है।

जातेर्महाव्रतमधत्त जिनेषु मुख्यस्तस्मात्परेऽहनि स-शान्ति-समुद्रभूर्वा।
श्रीपार्श्व एव परमोऽचरमस्तु मार्गे रामेऽक्रमेण ककुभामनुभावनीये ॥ ४/३९

कविकी शैलीका विद्रूप वहाँ दिखाई देता है जहाँ पद्योंसे विभिन्न अर्थ निकालनेके लिए उसने भाषाके साथ मनमाना खिलवाड़ किया है। पद्योंको विविध पक्षोंपर चरितार्थ करनेके लिए टीकाकारने जाने-माने पदोंके ऐसे चित्र-विचित्र अर्थ किये हैं, कि पाठक चमत्कृत तो होता है, किन्तु इस वज्रसे जूझता-

-जूझता वह हताश हो जाता है। तथाकथित ऋतुवर्णनको भी कविने चरितनायकोंपर घटानेकी चेष्टा की है। निम्नोक्त पद्य मुख्यतः पाण्डवचरितसे सम्बन्धित हैं, किन्तु टीकाकारने इससे सातों काव्यनायकोंके पक्षके अर्थ भी निकाले हैं। टीकाकी सहायताके बिना कोई विरला ही इसके अभीष्ट अर्थ कर सकता है।

भीष्मोऽग्रतो यमविधिः स्वगुरोरनिष्टः कृष्णालकग्रहणकर्म सभासमक्षम्।
वैराग्यहेतुरभवद् भविनो न कस्य दैवस्य वश्यमखिलं यदवश्यभाविः ॥ ४/२६

श्लोकार्धयमकसे आच्छन्न निम्नोक्त प्रकारके पद्योंके भी पाठकसे जब नाना अर्थ करनेकी आकांक्षा की जाती है, तो वह सिर धुननेके अतिरिक्त क्या कर सकता है?

नागाहत-विवाहेन तत्क्षणे सदृशः श्रियः। नागाहत-विवाहेन तत्क्षणे सदृशः श्रियः ॥ ६/५४

भाषा—सप्तसन्धान भाषायी खिलवाड़ है। काव्योंका नाना अर्थोंका बोधक बनानेकी आतुरताके कारण कविने जिस पदावलीका गुम्फन किया है, वह पाण्डित्य तथा रचनाकौशलकी पराकाष्ठा है। सायास प्रयुक्त भाषामें जिस कृत्रिमता एवं कष्टसाध्यताका आ जाना स्वाभाविक है, सप्तसन्धानमें वह भरपूर मात्रामें विद्यमान है। सप्तसन्धान सही अर्थमें क्लिष्ट तथा दुरूह है। सचमुच उस व्यक्तिके पाण्डित्य एवं चातुर्यपर आश्चर्य होता है जिसने इतनी गर्भित भाषाका प्रयोग किया है जो एक साथ सात-सात अर्थोंको विवृत कर सके। भाषाकी यह दुस्साध्यता काव्यका गुण भी है, दुर्गुण भी। जहाँतक यह कविके पाण्डित्य की परिचायक है, इसे, इस सीमित अर्थमें, गुण माना जा सकता है। किन्तु जब यह भाषात्मक क्लिष्टता अर्थबोधमें दुर्लंघ्य बाधा बनती है तब कविकी विद्वत्ता पाठकके लिए अभिशाप बन जाती है। विविध अर्थों की प्राप्तिके लिए पद्योंका भिन्न-भिन्न प्रकारसे अन्वय करने तथा सुपरिचित शब्दोंके अकल्पनीय अर्थ खोजने में बापुरे पाठकको असह्य बौद्धिक यातना सहनी पड़ती है। एक-दो उदाहरणोंसे यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

सवितृतनये रामासक्ते हरेस्तनुजे भुजे प्रसरति परे दौत्येऽदित्याः सुता भयभंगुराः।
श्रुतिगतमहानादा-देवं जगुर्निजमग्रजं रणविरमणं लीभक्षोभाद्विभीषणकायतः ॥ ५/३७

इस पद्यमें जिनेन्द्रोंकी कामविजयका वर्णन है। यह अर्थ निकालनेके लिए शब्दोंको कैसा तोड़ा-मरोड़ा है, इसका आभास टीकाके निम्नोक्त अंशसे भली-भाँति हो जायेगा।

हरेर्जिनेन्द्रस्य भुजे भोग्यकर्मणि तनुजे अल्पीभूते सवितृतनये प्रकाशविस्तारके जिनेन्द्रे रामे आत्मध्याने आसक्ते परे अत्युत्कृष्टे मोक्षे इत्यर्थः दौत्ये दूतकर्मणि प्रसरति ध्यानमेव मोक्षाय दूत-कर्मकृदिति भावः दित्याः सुताः कामादयः भयभंगुराः भयभीता जाताः विभीषणकायतः भयोत्पाद-ककायोत्सर्गविधायकशरीरात् जिनेन्द्रात् लोभक्षोभात् लोभस्य तद्विषयकजयाशारूपस्य क्षोभात् आघातात् जयाशात्यागात् प्रत्युत निजपराजयभीतेः श्रुतिगतः महानादा भयादेव महाशब्दकारका दीर्घविराविणः रणविरमणम् जिनेन्द्रतो विग्रहनिवर्त्तनं निजमग्रजमग्रेसरं देवं द्योतनात्मकं मोहराजं जगुः निवेदयामासुः।

प्रस्तुत पद्यमें केवलज्ञानप्राप्तिके पश्चात् जिनेश्वरका वर्णन है। यह अर्थ कैसे सम्भव है, इसका ज्ञान टीकाके बिना नहीं हो सकता।

सुमित्रांगजसंगत्या सदशाननभासुरः। अलिमुक्तेर्दानकार्यसारोऽभाल्लक्ष्मणाधिपः ॥ ६/५७

सुमित्रं सुष्ठु मेद्यति स्निह्यतीति केवलज्ञानं तदेवांगजं तस्य संगत्या केवलज्ञानयोगेन दशाननभासुरः दशसु दिक्षु आननं मुखमुपदेशकाले यस्य स दशाननस्तेन भासुरः लक्ष्मणाधिपः

लक्ष्म चिह्नमेव लक्ष्मणं तत् अधिपाति स्वसंगेन धारयतीति लक्ष्मणाधिपः अलिमुक्तेः अलेः सुरायाः मुक्तेस्त्यागात् दानकार्यसारः दानकार्यमुपदेशनमेव सारो यस्य स अभात् ।

किन्तु यह सप्तसन्धानका एक पक्ष है । इसके कुछ अंश ऐसे भी हैं जो इस भाषायी जादूगरीसे सर्वथा मुक्त हैं । माताओंकी गर्भावस्था, दोहद, कुमारजन्म तथा गणधरोंके वर्णनकी भाषा प्राञ्जलता, लालित्य तथा माधुर्यसे ओतप्रोत है । दिक्कुमारियोंके कार्यकलापोंका निरूपण अतीव सरल भाषामें हुआ है ।

काश्चिद् भुवः शोधनमादधाना जलानि पुर्यां ववृषुः सपुष्पम् ।
छत्रं दधुः काश्चन चामरेण तं वीजयन्ति स्म शुचिस्मितास्याः ।। २/२१

नवें सर्गकी सरलता तो वेदना-निग्रह रसका काम देती है । काव्यके पूर्वोक्त भागसे जूझनेके पश्चात् नवें सर्गकी सरल-सुबोध कविताको पढ़कर पाठकके मस्तिष्ककी तनी हुई नसोंको समुचित विश्राम मिलता है ।

सुवर्णवर्णं गजराजगामिनं प्रलम्बबाहुं सुविशाललोचनम् ।
नरामरेन्द्रैः स्तुतपादपंकजं नमामि भक्त्या वृषभं जिनोत्तमम् ।। ९/३०

प्रकृति-चित्रण—तत्कालीन महाकाव्य-परम्पराके अनुसार मेघविजयने काव्यमें प्राकृतिक सौन्दर्यका चित्रण किया है । तृतीय सर्गमें सुमेरुका तथा सप्तम सर्गमें छह परम्परागत ऋतुओंका वर्णन हुआ है । किन्तु यह प्रकृतिवर्णन कविके प्रकृति प्रेमका द्योतक नहीं है । सप्तसन्धान जैसे चित्रकाव्यमें इसका एकमात्र उद्देश्य महाकाव्य रूढ़ियोंकी खानापूर्ति करना है ।

ह्रासकालीन कवियोंकी भाँति मेघविजयने प्रकृतिवर्णनमें अपने भावदारिद्र्यको छिपानेके लिए चित्र-शैलीका आश्रय लिया है । श्लेष तथा यमककी भित्तिपर आधारित कविका प्रकृतिवर्णन एकदम नीरस तथा कृत्रिम है । उसमें न मार्मिकता है, न सरसता । वह प्रौढोक्ति तथा श्लेष एवं यमककी उछल-कूद तक ही सीमित है । वास्तविकता तो यह है कि श्लेष तथा यमककी दुर्दमनीय सनकने कविकी प्रतिभाके पंख काट दिये हैं । इसलिए प्रकृतिवर्णनमें वह केवल छटपटाकर रह जाती है ।

मेघविजयने अधिकतर प्रकृतिके स्वाभाविक पक्षको चित्रित करनेकी चेष्टा की है, किन्तु वह चित्र-काव्यके पाशसे मुक्त होनेमें असमर्थ है । अतः उसकी प्रकृति श्लेष और यमकके चक्रव्यूहमें फँसकर अदृश्य-सी हो गयी है । वर्षाकालमें नद-नदियोंकी गर्जनाकी तुलना हाथियों तथा सेनाकी गर्जना भले ही न कर सके, यमककी विकराल दहाड़के समक्ष वह स्वयं मन्द पड़ जाती है ।

न दानवानां न महावहानां नदा नवानां न महावहानाम् ।
न दानवानां न महावहानां न दानवानां न महावहानाम् ।। ७/२२

शीतके समाप्त हो जानेसे वसन्तमें यातायातकी बाधाएँ दूर हो जाती हैं, प्रकृतिपर नवयौवन छा जाता है, किन्तु इस रंगीली ऋतुमें जातीपुष्प कहीं दिखाई नहीं देता । प्रस्तुत पद्य में कविने वसन्तके इन उपकरणोंका अंकन किया है, पर वह श्लेषकी परतोंमें इस प्रकार दब गया है कि सहृदय पाठक उसे खोजता-खोजता झुँझला उठता है । फिर भी उसके हाथ कुछ नहीं आता ।

दुःशासनस्य पुरशासनजन्मनैव संप्रापितोऽध्वनियमो विघटोत्कटत्वात् ।
अन्येऽभिमन्युजयिनो गुरुगौरवार्हास् ते कौरवा अपि कृता हृतचौरवाचः ।। ७।१२

सप्तसन्धानमें कहीं-कहीं प्रकृतिके उद्दीपन पक्षका भी चित्रण हुआ है । प्रस्तुत पद्यमें मेरुपर्वतको प्राकृतिक सम्पदा तथा देवांगनाओंके सुमधुर गीतोंसे कामोद्रेक करते हुए चित्रित किया गया है ।

यस्मिन्नलं फललदद्दलशालिशाल-वृन्दावनी सुरजनी रजनीश्वरास्या।
गीतस्वरैः सुरमणी रमणीप्रणीतैस्तन्तन्यते तनुभृतामतनूदयं सा ॥ ३।३

इन अलंकृति प्रधान वर्णनोंकी बाढ़में कहीं-कहीं प्रकृतिका सहज सरल चित्र देखनेको मिल ही जाता है। पावसकी रातमें कम्बल ओढ़कर अपने खेतकी रखवाली करनेवाले किसान तथा वर्षाके जलसे भींगे हुए गलकम्बलको हिलानेवाली गायका यह मधुर चित्र स्वाभाविकतासे ओतप्रोत है।

रजनिबहुधान्योच्चैः रक्षाविधौ धृतकम्बलः सपदि दुधुवे वारांभाराद् गवा गलकम्बलः।
ऋषिरिव परक्षेत्रं सेवे कृषीबलं पुंगवश्चपलसबलं भीत्या जज्ञे बलं च पलाशजम् ॥७।२९

कुमारोंके जन्मके अवसरपर प्रकृति आदर्श रूपमें प्रकट हुई है। यहाँ वह स्वभावतः निसर्ग विरुद्ध आचरण करती है। कुमारोंके धरापर अवतीर्ण होते ही दिशाएँ शान्त हो गयीं, आकाश में दुन्दुभिनाद होने लगा तथा जल और आकाश तुरन्त निर्मल हो गये।

शान्तासु सर्वासु दिशासु रेणुर्न रेणुबाधां तु मनाग् व्यधासीत्।
दध्वान देवाध्वनि दुन्दुभीनां नादः प्रसादो नभसोऽम्भसोऽभात् ॥ २।११

वसन्तके मादक वातावरणमें मद्यपानका परित्याग करनेका उपदेश देते समय जैन यतिकी पवित्रतावादी प्रवृत्ति प्रबल हो उठी है। किन्तु उसका यह उपदेश भी श्लेषका परिधान पहनकर प्रकट होता है।

सीतापहारविधिरेष तवोपहारव्याहारनिर्भयविहारविनाशनाय।
तेनाधुनापि मधुनाशनतां जहीहीत्याहेव रावणमिह स्वधियालिजन्यम् ॥ ७।८

इस प्रकार अन्य अधिकांश ह्रासकालीन काव्योंकी भाँति सप्तसन्धानमें प्रकृति वर्णनके नामपर कविके रचनाकौशल (अलंकार प्रयोग कौशल) का प्रदर्शन हुआ है। प्रकृतिके प्रति यहाँ वाल्मीकि अथवा कालिदास के-से सहज अनुरागकी कल्पना करना व्यर्थ है।

सौन्दर्य-चित्रण—प्राकृतिक सौन्दर्यकी भाँति मानव-सौन्दर्यके चित्रणमें कविकी वृत्ति अधिक नहीं रमी है। चरितनायकोंकी माताओंके शारीरिक लावण्यकी ओर सूक्ष्म संकेत करके ही मेघविजयने संतोष कर लिया है। प्रस्तुत पंक्तियोंमें माताओंके मुखके अतिशय सौन्दर्य, स्तनोंकी पुष्टता तथा कटिकी क्षीणताका उत्प्रेक्षाके द्वारा वर्णन किया गया है।

सौरभ्यवित्तं जलजं प्रदाय चन्द्रः कलाकौशलमुज्ज्वलत्वम्।
जाने तदास्यानुगमाद् विभूतिं प्राप्तौ कजेन्दू समयं प्रपद्य ॥ १।६३
उच्चैर्दशा स्यान्नु परोपकाराद् युक्ता तदुच्चैस्तनता स्तनांगे।
सतां न चात्मम्भरिता कदाचित् तनु स्वमध्यं तत एव तस्याः ॥ १।७१

रस-योजना—सप्तसन्धानमें मनोरागोंका महाकाव्योचित रसात्मक चित्रण नहीं हुआ है। चित्रकाव्यमें इसके लिए अधिक स्थान भी नहीं है। जब कवि अपनी रचनाचातुरी प्रदर्शित करनेमें ही व्यस्त हो, तो मानव-मनकी सूक्ष्म-गहन क्रियाओं-विक्रियाओंका अध्ययन एवं उनका विश्लेषण करनेका अवकाश उसे कैसे मिल सकता है? अतः काव्यमें किसी भी रसका अंगीरसके रूपमें परिपाक नहीं हुआ है। काव्यकी प्रकृतिको देखते हुए इसमें शान्तरसकी प्रधानता मानी जा सकती है, यद्यपि जिनेन्द्रोंके धर्मोपदेशोंमें भी यह अधिक नहीं उभर सका है। तीर्थंकरकी प्रस्तुत देशनामें शान्तरसकी हल्की-सी छटा दिखाई देती है।

त्यजत मनुजा रागं द्वेषं धृतिं दृढसज्जने भजत सततं धर्मं यस्मादजिह्मगतारुचिः।
प्रकुरुत गुणारोपं पापं पराकुरुताचिराद् मतिरतितरां न व्याधेया परव्यसनादिषु ॥ ५।४९

तृतीय सर्गमें सुमेरु-वर्णनके अन्तर्गत देव-दम्पतियोंके विहारवर्णनमें सम्भोग श्रृंगारकी मार्मिक अवतारणा हुई है।

गोपाः स्फुरन्ति कुसुमायुधचापरोपात् कोपादिवाम्बुजदृशः कृतमानलोपाः।
क्रीडन्ति लोलनयनानयनाच्च दोलास्वान्दोलनेन विबुधाश्च सुधाशनेन॥ ३।४

काव्यमें यद्यपि भरतकी दिग्विजय तथा राम एवं कृष्णके युद्धोंका वर्णन है किन्तु उसमें वीर रसकी सफल अभिव्यक्ति नहीं हो सकी है। कुछ पद्योंके राम तथा कृष्ण पक्षके अर्थमें वीररसका पल्लवन हुआ है। इस दृष्टिसे यह युद्धचित्र दर्शनीय है।

तत्राप्तदानवबलस्य बलारिरेष न्यायान्तरायकरणं रणतो निवार्य।
धात्रीजिघृक्षु शिशुपालकराक्षसादिदुर्योधनं यवनभूपमपाचकार॥ ३।३०

अलंकारविधान—चित्रकाव्य होनेके नाते सप्तसन्धानमें चित्रशैलीके प्रमुख उपकरण अलंकारोंकी निर्बाध योजना हुई है। किन्तु यह ज्ञातव्य है कि काव्यमें अलंकार भावानुभूतिको तीव्र बनाने अथवा भावव्यंजनाको स्पष्टता प्रदान करनेके लिये प्रयुक्त नहीं हुए हैं। वे स्वयं कविके साध्य हैं। उनकी साधनामें लग कर वह काव्यके अन्य धर्मोंको भूल जाता है जिससे प्रस्तुत काव्य अलंकृति-प्रदर्शनका अखाड़ा बन गया है।

मेघविजयने अपने लिये बहुत भयंकर लक्ष्य निर्धारित किया है। सात नायकोंके जीवनवृत्तको एकसाथ निबद्ध करनेके लिये उसे पग-पगपर श्लेषका आँचल पकड़ना पड़ा है। वस्तुतः श्लेष उसकी बैसाखी है, जिसके बिना वह एक पग भी नहीं चल सकता। काव्यमें श्लेषके सभी रूपोंका प्रयोग हुआ है। पाँचवें सर्गमें श्लेषात्मक शैलीका विकट रूप दिखाई देता है। पद्योंको विभिन्न अर्थोंका द्योतक बनानेके लिये यहाँ जिस श्लेषगर्भित भाषाकी योजना की गयी है, उससे जूझता-जूझता पाठक हताश हो जाता है। टीकाकी सहायताके बिना यह सर्ग अपठनीय है। निम्नोक्त पद्यके तीन मुख्य अर्थ हैं, जिनमेंसे एक पाँच तीर्थंकरोंपर घटित होता है, शेष दो राम तथा कृष्णके पक्षमें।

श्रुतिमुपगता दीव्यद्रूपा सुलक्षणलक्षिता सुरबलभृताम्भोधावद्रौपदीरितसद्गवी।
सुररववशाद् भिन्नाद् द्वीपान्नतेन समाहृता हरिपवनयोर्धर्मस्यात्रात्मजेषु पराजये॥ ५।३६

यह अनुष्टुप् इससे भी अधिक विकट है। कविको इसके चार अर्थ अभीष्ट हैं।

कुमारी वेदसाहस्रान् सराज्यान् यत्कृते दधत्।
इक्ष्वाकुवंशवृषभः शं-के-वलश्रिया श्रितः॥ ६।५९

अपने कथ्यके निबन्धनके लिये कविने श्लेषकी भाँति यमकका भी बहुत उपयोग किया है। आठवाँ सर्ग तो आद्यन्त यमकसे भरा पड़ा है। नगरवर्णनकी प्रस्तुत पंक्तियोंसे श्लोकार्धयमककी करालताका अनुमान किया जा सकता है।

न गौरवं ध्यायत्ति विप्रमुक्तं न गौरवं ध्यायति विप्रमुक्तम्।
पुनर्नवाचारभसा नवार्था-पुनर्नवाचारभसा नवार्थाः॥ १।५२

शब्दालंकारोंमें अनुप्रासका भी काव्यमें पर्याप्त प्रयोग हुआ है। यमक तथा श्लेषसे परिपूर्ण इस काव्य में अनुप्रासकी मधुरध्वनि रोचक वैविध्य उपस्थित करती है। चरितनायकोंके पिताओंकी शासनव्यवस्थाके वर्णनके प्रसंगमें अनुप्रासका नादसौन्दर्य मोहक बन पड़ा है।

सांकर्यकार्यं प्रविचार्य वार्यं विरोधमुत्सार्य समर्त्तवस्ते।
सामान्यमाधाय समाधिसाराधिकारमीयुर्भुवि निर्विकाराः॥ २।६

अन्त्यानुप्रासमें यह अनुरणनात्मक ध्वनि चरम सीमाको पहुँच जाती है।

शब्दालंकारोंके अतिरिक्त काव्यमें प्रायः सभी मुख्य अर्थालंकार प्रयुक्त हुए हैं। कुमारवर्णनके प्रस्तुत पद्यमें अप्रस्तुत वटवृक्षकी प्रकृतिसे प्रस्तुत कुमारके गुणोंके व्यंग्य होनेसे अप्रस्तुत प्रशंसा है।

नम्रीभवेत् सविटपोऽपि वटो जनन्यां भूमौ लतापरिवृतो निभृतः फलाद्यैः।
कौ-लीनतामुपनतां निगदत्ययं किं सम्यग्गुरोर्विनय एव महत्त्वहेतुः॥ ३।१९

अप्रस्तुत आरोग्य, भाग्य तथा अभ्युदयका यहाँ एक 'आविर्भाव' धर्मसे सम्बन्ध है। अतः तुल्ययोगिता अलंकार है।

आरोग्य-भाग्याभ्युदया जनानां प्रादुर्बभूवुर्विगतै जनानाम्।
वेषाविशेषान्मुदिताननानां प्रफुल्लभावाद् भुवि काननानाम्॥ २।१३

वसन्तवर्णनकी निम्नलिखित पंक्तियोंमें प्रस्तुत चन्द्रमा तथा अप्रस्तुत राजाका एक समानधर्मसे संबंध होनेके कारण दीपक है।

व्यर्था सपक्षरुचिरम्बुजसन्धिबन्धे राज्ञो न दर्शनमिहास्तगतिश्च मित्रे।
किं किं करोति न मधुव्यसनं च दैवादस्माद् विचार्य कुरु सज्जन तन्निवृत्तिम्॥ ७।९

प्रस्तुत पद्यमें अतिशयोक्तिकी अवतारणा हुई है, क्योंकि जिनेन्द्रोंकी कीर्त्तिको यहाँ रूपवती देवांगनाओंसे भी अधिक मनोरम बताया गया है।

मनोरमा वा रतिमालिका वा रम्भापि सा रूपवती प्रिया स्यात्।
न सुत्यजा स्याद् वनमालिकापिकीर्त्तिर्विभोर्यत्र सुरैर्निपेया॥ ९।६

दुर्जननिन्दाके इस पद्यमें आपाततः दुर्जनकी स्तुति की गयी है, किन्तु वास्तवमें, इस वाच्य स्तुतिसे निन्दा व्यंग्य है। अतः यहाँ व्याजस्तुति है।

मुखेन दोषाकरवत् समानः सदा-सदम्भः-सवने सशौचः।
काव्येषु सद्भावनयानमूढः किं वन्द्यते सज्जनवन्न नीचः॥ १।५

इस समासोक्तिमें प्रस्तुत अग्निपर अप्रस्तुत क्रोधी व्यक्तिके व्यवहारका आरोप किया गया है।

तेजो वहन्नसहनो दहनः स्वजन्महेतून् ददाह तृणपुञ्जनिकुञ्जमुख्यान्।
लेभे फलं त्वविकलं तदयं कुनीतेर्भस्मावशेषतनुरेष ततः कृशानुः॥ ३।२०

काव्यमें प्रयुक्त अन्य अलंकारोंमेंसे कुछके उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं।

अर्थान्तरन्यास—क्वचन विजने तस्यौ स्वस्यो ररक्ष न रक्षकम्।
न खलु परतो रक्षापेक्षा प्रभौ हरिणाश्रिते॥ ५।९

विरोधाभास—ये कामरूपा अपि नो विरूपाः कृतापकारेऽपि न तापकाराः।
सारस्वता नैव विकर्णिकास्ते कास्तेजसां नो कलयन्ति राजीः॥ १।३८

परिसंख्या—जज्ञे करव्यतिकरः किल भास्करादौ दण्डग्रहाग्रहदशा नवमस्करादौ।
नैपुण्यमिष्टजनमानसतस्करादौ छेदः सुसूत्रधरणात् तदयस्करादौ॥ ३।४१

उदात्त—पात्राण्यमर्त्या ननृतुः पदे पदे समुन्ननादानकदुन्दुभिर्मुदे।
घनाघनस्य भ्रमतो वदावदे मयूरवर्गे नटनान्निसर्गतः॥ २।८

अर्थापत्ति—प्रीत्या विशिष्टा नगरेषु शिष्टाः काराविकारा न कृताधिकाराः।
बाधा न चाधान्नरकेऽसुरोऽपि परोऽपि नारोपितवान् प्रकोपम्॥ २।१४

विशेषोक्ति—जाते विवाहसमये न मनाग्मनोऽन्त-
र्लीनो मलीनविषयेषु महाकुलीनः॥ ३।३७

छंद

मेघविजयने छन्दोंके विधानमें शास्त्रीय नियमका यथावत् पालन किया है। प्रथम सर्ग उपजातिमें निबद्ध है। सर्गके अन्तमें मालिनी तथा स्रग्धराका प्रयोग किया गया है। द्वितीय सर्गमें इन्द्रवज्राकी प्रधानता है। सर्गान्तके पद्य शिखरिणी, मालिनी, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति तथा शार्दूलविक्रीडितमें हैं। तृतीय तथा चतुर्थ सर्गकी रचनामें वसन्ततिलकाका आश्रय लिया गया है। अन्तिम पद्योंमें क्रमशः स्रग्धरा तथा शार्दूलविक्रीडित प्रयुक्त हुए हैं। पाँचवें तथा छठे सर्गका मुख्य छन्द क्रमशः हरिणी तथा अनुष्टुप् है। पाँचवें सर्गका अन्तिम पद्य स्रग्धरामें निबद्ध है। छठे सर्गके अन्तिम पद्योंकी रचना वसन्ततिलका तथा शार्दूलविक्रीडितमें हुई है। सातवें सर्गमें जो छह छन्द प्रयुक्त हुए हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—हरिणी, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, इन्द्रवज्रा, स्वागता तथा शिखरिणी। अन्तिम दो सर्गोंके प्रणयनमें क्रमशः द्रुतविलम्बित तथा उपजातिको अपनाया गया है। इनके अन्तमें शार्दूलविक्रीडित, वंशस्थ तथा स्रग्धरा छन्द प्रयुक्त हुए हैं। कुल मिलाकर सप्तसन्धानमें तेरह छन्दोंका उपयोग किया गया है। इनमें उपजातिका प्राधान्य है।

उपसंहार——मेघविजयकी कविता, उनकी परिचारिकाकी भाँति गूढ़ समस्याएँ लेकर उपस्थित होती है (२।७)। उन समस्याओंका समाधान करनेकी कविमें अपूर्व क्षमता है। इसके लिये कविने भाषाका जो निर्मम उत्पीडन किया है, वह उसके पाण्डित्यको व्यक्त अवश्य करता है, किन्तु कविताके नाम पर पाठकको बौद्धिक व्यायाम कराना, उसका भाषा तथा स्वयं कविताके प्रति अक्षम्य अपराध है। अपने काव्यकी समीक्षा की कविने पाठकसे जो आकांक्षा की है,[1] उसके पूर्तिमें उसकी दूरारूढ़ शैली सबसे बड़ी बाधा है। पर यह स्मरणीय है कि सप्तसन्धानके प्रणेताका उद्देश्य चित्रकाव्य-रचनामें अपनी क्षमताका प्रदर्शन करना है, सरस कविताके द्वारा पाठकका मनोरंजन करना नहीं। काव्यको इस मानदण्डसे आंकनेपर ज्ञात होगा कि वह अपने लक्ष्यमें पूर्णतः सफल हुआ है। बाणके गद्यकी मीमांसा करते हुए बेबरने जो शब्द कहे थे, वे सप्तसन्धानपर भी अक्षरशः लागू होते हैं। सचमुच सप्तसन्धान महाकाव्य एक बीहड़ वन है, जिसमें पाठकको अपने धैर्य, श्रम तथा विद्वत्ताकी कुल्हाड़ीसे झाड़-झंखाड़ोंको काटकर अपना रास्ता स्वयं बनाना पड़ता है।

१. काव्येक्षणाद्वः कृपया पयोवद् भावाः स्वभावात्सरसाः स्युः। १।१५